श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

प्रह्लाद स्तुति

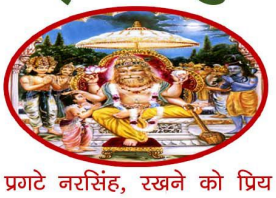

उग्र रूप धर प्रगटे नरसिंह, रखने को प्रिय भक्त की लाज।
सुनकर स्तुति दितिपौत्र के मुख से, अंक में बैठाए प्रह्लाद।।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
सप्तमः स्कन्धः
॥ अथ नवमोऽध्यायः ॥

नारद उवाच

एवं(म्) सुरादयः(स्) सर्वे, ब्रह्मरुद्रपुरः(स्)सराः ।
नोपैतुमशकन्मन्यु-सं(म्)रम्भं(म्) सुदुरासदम् ॥ 1॥

ब्रह्म+ रुद्र+ पुरस्+ सराः ,नोपै+ तुम+ शकन्+ मन्यु

नारदजी कहते हैं इस प्रकार ब्रह्मा, शंकर आदि सभी देवगण नृसिंह भगवान् के क्रोधावेश को शान्त न कर सके और न उनके पास जा सके। किसी को उसका ओर छोर नहीं दीखता था।

साक्षाच्छ्रीः(फ्) प्रेषिता देवैर्- दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् ।
अदृष्टाश्रुतपूर्वत्वात्, सा नोपेयाय शङ्किता ॥ 2॥

तन्+ मह+ दद्+ भुतम् , अदृष्टा +श्रुत + पूर्वत् + वात्

देवताओं ने उन्हें शान्त करने के लिये स्वयं लक्ष्मीजी को भेजा। उन्होंने जाकर जब नृसिंह भगवान् का वह महान् अद्भुत रूप देखा, तब भगवश वे भी उनके पासतक न जा सकीं। उन्होंने ऐसा अनूठा रूप न कभी देखा और न सुना ही था।

प्रह्लादं(म्) प्रेषयामास, ब्रह्मावस्थितमन्तिके ।
तातं प्रशमयोपेहि, स्वपित्रे कुपितं(म्) प्रभुम् ॥ 3॥

ब्रह्मा+ वस्थित+ मन्तिके , प्रश+ मयोपेहि

तब ब्रह्माजी ने अपने पास ही खड़े प्रह्लाद को यह कह कर भेजा कि 'बेटा! तुम्हारे पिता पर ही तो भगवान् कुपित हुए थे। अब तुम्हीं उनके पास जाकर उन्हें शान्त करो।

तथेति शनकै राजन्- महाभागवतोऽर्भकः ।
उपेत्य भुवि कायेन, ननाम विधृताञ्जलिः ॥ 4॥

महा+ भागवतोऽर् + भकः, विधृताञ् +जलिः

भगवान् के परम प्रेमी प्रह्लाद 'जो आज्ञा' कह कर और धीरे से भगवान् के पास जाकर हाथ जोड़ पृथ्वी पर साष्टाङ्ग लोट गये।

स्वपादमूले पतितं(न्) तमर्भकं(वँ),
विलोक्य देवः(ख्) कृपया परिप्लुतः ।
उत्थाप्य तच्छीर्ष्ण्यदधात् कराम्बुजं(ङ्),
कालाहिवित्रस्तधियां(ङ्) कृताभयम् ॥ 5॥

तच्छीर्ष्ण्य+ दधात् ,कालाहि+ वित्रस् + तधियां(ङ्)

नृसिंह भगवान् ने देखा कि नन्हा-सा है बालक मेरे चरणों के पास पड़ा हुआ है। उनका हृदय दया से भर गया। उन्होंने प्रह्लाद को उठाकर उनके सिर पर अपना वह कर-कमल रख दिया, जो कालसर्प से भयभीत पुरुषों को अभय दान करने वाला है।

स तत्करस्पर्शधुताखिलाशुभः(स्),
सपद्यभिव्यक्तपरात्मदर्शनः ।
तत्पादपद्मं(म्) हृदि निर्वृतो दधौ,
हृष्यत्तनुः(ख्) क्लिन्नहृदश्रुलोचनः ॥ 6॥

तत्+ करस्पर्श+ धुता+ खिलाशुभः(स्), सपद्य+ भिव्यक्त+ परात्+ मदर्शनः

हृष्यत्+ तनुः(ख्), क्लिन्+ नहृद+ श्रुलोचनः

भगवान् के करकमलों का स्पर्श होते ही उनके बचे-खुचे अशुभ संस्कार भी झड़ गये। तत्काल उन्हें परमात्मतत्त्व का साक्षात्कार हो गया। उन्होंने बड़े प्रेम और आनन्द में मन होकर भगवान् के चरणकमलों को अपने हृदय में धारण किया। उस समय उनका सारा शरीर पुलकित हो गया, हृदय में प्रेम की धारा प्रवाहित होने लगी और नेत्रों से आनन्दा झरने लगे।

अस्तौषीद्धरिमेकाग्र-मनसा सुसमाहितः ।
प्रेमगद्गदया वाचा, तन्न्यस्तहृदयेक्षणः ॥ 7॥

अस्तौषीद्+ धरिमे +काग्र, तन्+ न्यस्+ तहृदये + क्षणः

भावपूर्ण हृदय और निर्निमेष नयनों से भगवान् को देख रहे थे। भावसमाधि से स्वयं एकाग्र हुए मन के द्वारा उन्होंने भगवान् के गुणों का चिन्तन करते हुए प्रेमगद्गद वाणी से स्तुति की।

प्रह्लाद उवाच

ब्रह्मादयः(स्) सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः(स्),
सत्त्वैकतानमतयो वचसां(म्) प्रवाहैः ।
नाराधितुं(म्) पुरुगुणैरधुनापि पिप्रुः(ख्),
किं(न्) तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः ॥ 8॥

सत्त्वै+ कता+ नमतयो, पुरुगुणै+ रधुनापि

प्रह्लादजी ने कहा ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि- मुनि और सिद्ध पुरुषों की बुद्धि निरन्तर सत्त्वगुण में ही स्थित रहती है। फिर भी वे अपनी धारा प्रवाह स्तुति और अपने विविध गुणों से आपको अब तक भी सन्तुष्ट नहीं कर सके। फिर मैं तो घोर असुर जाति में उत्पन्न हुआ हूँ! क्या आप मुझ से सन्तुष्ट हो सकते हैं ?

मन्ये धनाभिजनरूपतपः(श्)श्रुतौजस्-
तेजः(फ्)प्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः ।
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुं(म्)सो,
भक्त्या तुतोष भगवान्गजयूथपाय ॥ 9॥

धना+ भिजनरू + पतपः(श्)+ श्रुतौजस् ,

प्रभा+ वबलपौ+ रुषबुद्धि+ योगाः, भगवान्+ गजयू+ थपाय

मैं समझता हूँ कि धन, कुलीनता, रूप, तप, विद्या, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि और योग—ये सभी गुण परम पुरुष भगवान् को सन्तुष्ट करने में समर्थ नहीं हैं परन्तु भक्ति से तो भगवान् गजेन्द्र पर भी सन्तुष्ट हो गये थे।

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं(वँ) वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ-
प्राणं(म्) पुनाति स कुलं(न्) न तु भूरिमानः ॥ 10॥

द्विषड्+ गुणयुता + दरविन्+ दनाभ, पादा+ रविन्+ दविमुखाच्+छ्पचं(वँ)

तदर्पि+ तमनो + वचने+ हितार्थ

मेरी समझ से इन बारह गुणों से युक्त ब्राह्मण भी यदि भगवान् कमल नाभ के चरण-कमलों से विमुख हो तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है, जिसने अपने मन, वचन, कर्म, धन और प्राण भगवान् के चरणों में समर्पित कर रखे है; क्योंकि वह चाण्डाल तो अपने कुल तक को पवित्र कर देता है और बड़प्पन का अभिमान रखने वाला वह ब्राह्मण अपने को भी पवित्र नहीं कर सकता।

नैवात्मनः(फ्) प्रभुरयं(न्) निजलाभपूर्णो,
मानं(ञ्) जनादविदुषः(ख्) करुणो वृणीते ।
यद् यज्जनो भगवते विदधीत मानं(न्),
तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः ॥ 11॥

जना+ दविदुषः(ख्)

सर्व शक्तिमान् प्रभु अपने स्वरूप के साक्षात्कार से ही परिपूर्ण है। उन्हें अपने लिये क्षुद्र पुरुषों से पूजा ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। वे करुणा वश ही भोले भक्तों के हित के लिये उनके द्वारा की हुई पूजा स्वीकार कर लेते हैं। जैसे अपने मुख का सौन्दर्यदर्पण में दीखने वाले प्रतिबिम्ब को भी सुन्दर बना देता है, वैसे ही भक्त भगवान् के प्रति जो-जो सम्मान प्रकट करता है, वह उसे ही प्राप्त होता है।

तस्मादहं(वँ) विगतविक्लव ईश्वरस्य,
सर्वात्मना महि गृणामि यथामनीषम् ।
नीचोऽजया गुणविसर्गमनुप्रविष्टः(फ्),
पूयेत येन हि पुमाननुवर्णितेन ॥ 12॥

विगत+ विक्लव, गुणविसर्ग+ मनु +प्रविष्टः, पुमा +ननु+ वर्णितेन

इसलिये सर्वथा अयोग्य और अनधिकारी होने पर भी मैं बिना किसी शङ्का के अपनी बुद्धि के अनुसार सब प्रकार से भगवान् को महिमा का वर्णन कर रहा हूँ। इस महिमा के गान का ही ऐसा प्रभाव है कि अविद्यावश संसार चक्र में पड़ा हुआ जीव तत्काल पवित्र हो जाता है।

सर्वे ह्यमी विधिकरास्तव सत्त्वधाम्नो,
ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्विजन्तः ।
क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य,
विक्रीडितं(म्) भगवतो रुचिरावतारैः ॥ 13॥

विधिकरास्+ तव, चोद्+ विजन्तः, उतात्+ मसुखाय

भगवन्! आप सत्त्वगुण के आश्रय है। ये ब्रह्मा आदि सभी देवता आप के आज्ञाकारी भक्त है। ये हम दैत्यों की तरह आप से द्वेष नहीं करते। प्रभो! आप बड़े-बड़े सुन्दर सुन्दर अवतार ग्रहण करके इस

जगत के कल्याण एवं अभ्युदय के लिये तथा उसे आत्मानन्द की प्राप्ति कराने के लिये अनेकों प्रकार को लोलाएँ करते हैं।

तद् यच्छ मन्युमसुरश्च हतस्त्वयाद्य,
मोदेत साधुरपि वृश्चिकसर्पहत्या ।
लोकाश्च निर्वृतिमिताः(फ्) प्रतियन्ति सर्वे,
रूपं(न्) नृसिं(म्)ह विभयाय जनाः(स्) स्मरन्ति ॥ 14॥

मन्यु+ मसुरश्च, हतस्+ त्वयाद्य, वृश्चि+ कसर्प+ हत्या

जिस असुर को मारने के लिये आपने क्रोध किया था, वह मारा जा चुका। अब आप अपना क्रोध शान्त कीजिये। जैसे बिच्छू और साँप की मृत्यु से सज्जन भी सुखी ही होते हैं, वैसे ही इस दैत्य के संहार से सभी लोगों को बड़ा सुख मिला है। अब सब आपके शान्त स्वरूप के दर्शन को बाट जोह रहे हैं। नृसिंहदेव ! भय से मुक्त होने के लिये भक्त जन आपके इस रूपका स्मरण करेंगे।

नाहं(म्) बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्य-
जिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदं(म्)ष्ट्रात् ।
आन्त्रस्रजः क्षतजकेसरशङ्कुकर्णान्-
निर्ह्रादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात् ॥ 15॥

जिह्वार्क+ नेत्र+ भ्रुकुटी+ रभसोग्र+ दं(म्)ष्ट्रात्,
आन्त्रस्+ रज: क्षत+ जकेस+ रशङ्.+ कुकर्णान्
निर्ह्रा+ दभीत+ दिगिभा+ दरिभिन्+ नखाग्रात्

परमात्मन् ! आपका मुख बड़ा भयावना है। आपकी जीभ लपलपा रही है। आंखें सूर्य के समान हैं। भौहें चढ़ी हुई हैं। बड़ी पैनी दाढ़े हैं। आंतों की माला, खून से लथपथ गरदन के बाल, बर्छे की तरह सीधे खड़े कान और दिग्गजों को भी भयभीत कर देने वाला सिंहनाद एवं शत्रुओं को फाड़ डालने वाले आपके इन नखों को देख कर मैं तनिक भी भयभीत नहीं हुआ हूँ।

त्रस्तोऽस्म्यहं(ङ्) कृपणवत्सल दुः(स्)सहोग्र-
सं(म्)सारचक्रकदनाद् ग्रसतां(म्) प्रणीतः ।
बद्धः(स्) स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं(म्),
प्रीतोपवर्गशरणं(म्) ह्वयसे कदा नु ॥ 16॥

सं(म्)सा+ रचक्र+ कदनाद् ,स्वकर्म+ भिरुशत्+ तम

दीनबन्धो मैं भयभीत हूँ तो केवल इस असह्य और उग्र संसार-चक्र मे पिसने से। मैं अपने कर्मपाशों से बँधकर इन भयङ्कर जन्तुओं के बीच में डाल दिया गया हूँ। मेरे स्वामी! आप प्रसन्न होकर मुझे कब अपने उन चरण कमलों में बुलायेंगे, जो समस्त जीवों की एकमात्र शरण और मोक्ष स्वरूप हैं ?

यस्मात् प्रियाप्रियवियोगसयोगजन्म-

शोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः ।

दुःखौषधं(न्) तदपि दुःखमतद्धियाहं(म्),

भूमन्भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगम् ॥ 17॥

प्रियाप्रिय+ वियो+ गसयो+ गजन्म ,दुःख+ मतद्+ धियाहं(म्)

अनन्त ! मैं जिन-जिन योनियों में गया, उन सभी योनियों में प्रिय के वियोग और अप्रिय के संयोग से होने वाले शोक की आग में झुलसता रहा। उन दुःखों को मिटाने की जो दवा है, वह भी दुःखरूप हो है मैं न जाने कब से अपने से अतिरिक्त वस्तुओं को आत्मा समझ कर इधर-उधर भटक रहा हूँ। अब आप ऐसा साधन बतलाइये जिस से कि आपकी सेवा-भक्ति प्राप्त कर सकूँ।

सोऽहं(म्) प्रियस्य सुहृदः(फ्) परदेवताया,

लीलाकथास्तव नृसिं(म्)ह विरिञ्चगीताः ।

अञ्ञस्तितर्म्यनुगृणन्गुणविप्रमुक्तो,

दुर्गाणि ते पदयुगालयहं(म्)ससङ्गः ॥ 18॥

अञ्ञस्ति+ तर्म्य+ नुगृणन्+ गुण+ विप्रमुक्तो, पदयुगा+ लय+हं(म्)स + सङ्गः

प्रभो ! आप हमारे प्रिय हैं। अहैतुक हितैषी सुहृद् हैं । आप ही वास्तव में सबके परमाराध्य है। मैं ब्रह्माजी के द्वारा गायी हुई आपकी लीला-कथाओं का गान करता हुआ बड़ी सुगमता से रागादि प्राकृत गुणों से मुक्त होकर इस संसार की कठिनाइयों को पार कर जाऊँगा; क्योंकि आपके चरणयुगलों में रहनेवाले भक्त परमहंस महात्माओं का सङ्ग तो मुझे मिलता ही रहेगा।

बालस्य नेह शरणं(म्) पितरौ नृसिं(म्)ह,

नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्ञतो नौः ।

तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्टस्-

तावद् विभो तनुभृतां(न्) त्वदुपेक्षितानाम् ॥ 19॥

चा+ गदमुदन्+ वति,तत्+ प्रति+ विधिर्य

भगवान् नृसिंह! इस लोक में दुखी जीवों का दुःखः मिटाने के लिये जो उपाय माना जाता है, वह आपके उपेक्षा करने पर एक क्षण के लिये ही होता है। यहाँ तक कि माँ-बाप बालक की रक्षा नहीं कर सकते, औषधि रोग नहीं मिटा सकती और समुद्र में डूबते हुए को नौका नहीं बचा सकती।

यस्मिन्यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद्,

यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः(फ्) परो वा ।

भावः(ख्) करोति विकरोति पृथक्स्वभावः(स्),

सञ्चोदितस्तदखिलं(म्) भवतः(स्) स्वरूपम् ॥ 20॥

यस्+ त्वपरः(फ्),पृथक्+ स्वभावः(स्), सञ् +चोदितस्+ तदखिलं(म्)

सत्त्वादि गुणों के कारण भिन्न-भिन्न स्वभाव के जितने भी ब्रह्मादि श्रेष्ठ और कालादि कनिष्ठ कर्ता हैं, उनको प्रेरित करने वाले आप ही हैं। वे आपकी प्रेरणा से जिस आधार में स्थित होकर जिस निमित्त से जिन मिट्टी आदि उपकरणों से जिस समय जिन साधनों के द्वारा जिस अदृष्ट आदि की सहायता से जिस प्रयोजन के उद्देश्य से जिस विधि से जो कुछ उत्पन्न करते हैं या रूपान्तरित करते हैं, वे सब और वह सब आपका ही स्वरूप है।

माया मनः(स्) सृजति कर्ममयं(म्) बलीयः(ख्),
कालेन चोदितगुणानुमतेन पुं(म्)सः ।
छन्दोमयं(यँ) यदजयार्पितषोडशारं(म्),
सं(म्)सारचक्रमज कोऽतितरेत् त्वदन्यः ॥ 21॥

चो+ दितगुणा+ नुमतेन, यदजयार्+ पितषो+ डशारं(म्)

पुरुष की अनुमति से काल के द्वारा गुणों में क्षोभ होने पर माया मनः प्रधान लिङ्गशरीर का निर्माण करती है। यह लिङ्गशरीर बलवान् कर्ममय एवं अनेक नाम-रूपों में आसक्त छन्दोमय है। यही अविद्या के द्वारा कल्पित मन, दस इन्द्रिय और पाँच तन्मात्रा इन सोलह विकार रूप अरोंसे युक्त संसार चक्र है। जन्मरहित प्रभो! आपसे मित्र रहकर ऐसा कौन पुरुष है, जो इस मन रूप संसार चक्र को पार कर जाय ?

सं त्वं(म्) हि नित्यविजितात्मगुणः(स्) स्वधाम्ना,
कालो वशीकृतविसृज्यविसर्गशक्तिः ।
चक्रे विसृष्टमजयेश्वर षोडशारे,
निष्पीड्यमानमुपकर्ष विभो प्रपन्नम् ॥ 22॥

नित्य+ विजितात्+ मगुणः(स्), वशी+ कृतविसृज्य+ विसर्ग+ शक्तिः

विसृष्ट +मजयेश्वर, निष्पीड्यमा+ नमुपकर्ष

सर्वशक्तिमान् प्रभो ! माया इस सोलह अरोवाले संसार-चक्र में डाल कर ईख के समान मुझे पेर रही है। आप अपनी चैतन्य शक्ति से बुद्धि के समस्त गुणों को सर्वदा पराजित रखते है और काल रूप से सम्पूर्ण साध्य और साधनों को अपने अधीन रखते हैं। मैं आपकी शरण में आया हूँ, आप मुझे इस से बचाकर अपनी सन्निधि में खींच लीजिये।

दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपाना-
मायुः(श्) श्रियो विभव इच्छति याञ्जनोऽयम् ।
येऽस्मत्पितुः(ख्) कुपितहासविजृम्भितभ्रू-

विस्फूर्जितेन लुलिताः(स्) स तु ते निरस्तः ॥ 23॥

विभोऽ+ खिलधिष्ण्य+ पाना,कुपितहा+ सविजृम्+ भितभ्रू

भगवन् ! जिन के लिये संसारी लोग बड़े लालायित रहते हैं,स्वर्गमें मिलने वाली समस्त लोकपालों की वह आयु, लक्ष्मी और ऐश्वर्य मैंने खूब देख लिये। जिस समय मेरे पिता तनिक क्रोध करके हँसते थे और उससे उनकी भौहें थोड़ी टेढ़ीं हो जाती थीं, तब उन स्वर्ग की सम्पत्तियों के लिये कहीं ठिकाना नहीं रह जाता था, वे लुटती फिरती थीं। किन्तु आपने मेरे उन पिता को भी मार डाला।

तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषो ज्ञ,
आयुः(श्) श्रियं(वँ) विभवमैन्द्रियमाविरिञ्चात् ।
नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण,
कालात्मनोपनय मां(न्) निजभृत्यपार्श्वम् ॥ 24॥

तस्मा+ दमूस्+ तनुभृता+ महमा+ शिषो, विभवमैन्+ द्रियमा+ विरिञ्चात्

विलुलिता+ नुरु+ विक्रमेण, निज+ भृत्य+ पार्श्वम्

इसलिये मैं ब्रह्म लोक तक की आयु, लक्ष्मी, ऐश्वर्य और इन्द्रिय भोग जिन्हें संसार के प्राणी चहा करतेहैं, नहीं चाहता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि अत्यन्त शक्ति शाली काल का रूप धारण करके आपने उन्हें ग्रस रखा है। इसलिये मुझे आप अपने दासों की सन्निधि में ले चलिये।

कुत्राशिषः(श्) श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः(ख्),
केदं(ङ्) कलेवरमशेषरुजां(वँ) विरोहः ।
निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान्,
कामानलं(म्) मधुलवैः(श्) शमयन्दुरापैः ॥ 25॥

मृग+ तृष्णि+ रूपाः(ख्), कले+ वरमशे+ षरुजां(वँ)

विषय भोग की बातें सुनने में हो अच्छी लगती हैं, वास्तव में वे मृगतृष्णा के जल के समान नितान्त असत्य हैं और यह शरीर भी, जिस से वे भोग भोगे जाते हैं, अगणित रोगों का उद्गम स्थान है। कहाँ वे मिथ्या विषय भोग और कहाँ यह रोगयुक्त शरीर! इन दोनों की क्षणभङ्गुरता और असारता जान कर भी मनुष्य इन से विरक्त नहीं होता। वह कठिनाई से प्राप्त होने वाले भोग के नन्हें-नन्हें मधुविन्दुओं से अपनी कामना की आग | बुझाने की चेष्टा करता है !

क्काहं(म्) रजः(फ्)प्रभव ईश तमोऽधिकेऽस्मिन्,
जातः(स्) सुरेतरकुले क्क तवानुकम्पा ।
न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया,
यन्मेऽर्पितः(श्) शिरसि पद्मकरः(फ्) प्रसादः ॥ 26॥

तमोऽ+ धिकेऽस्+ मिन्

प्रभो ! कहाँ तो इस तमोगुणी असुरवंश में रजोगुण से उत्पन्न हुआ मैं, और कहाँ आपकी अनन्त कृपा! धन्य है। आपने अपना परम प्रसाद स्वरूप और सकल सन्तापहारी वह करक मल मेरे सिर पर रखा है, जिसे आपने ब्रह्मा, शङ्कर और लक्ष्मीजी के सिर पर भी कभी नहीं रखा।

नैषा परावरमतिर्भवतो ननु* स्याज्-
जन्तोर्यथाऽऽत्मसुहृदो जगत*स्तथापि ।
सं(म्)सेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः(स्),
सेवानुरूपमुदयो न परावर*त्वम् ॥ 27॥

परावर+ रमतिर्+ भवतो, जन्तोर्+ यथाऽऽत्+ मसुहृदो

दूसरे संसारी जीवों के समान आपमें छोटे-बड़े का भेदभाव नहीं है; क्योंकि आप सबके आत्मा और अकारण प्रेमी हैं। फिर भी कल्प वृक्ष के समान आपका कृपा प्रसाद भी सेवन भजन से ही प्राप्त होता है। सेवा के अनुसार ही जीवों पर आपकी कृपा का उदय होता है, उसमें जातिगत उच्चता या नीचता कारण नहीं है।

एवं(ञ्) जनं(न्) निपतितं(म्) प्रभवाहिकूपे,
कामाभिकाममनु यः(फ्) प्रपतन्प्रसङ्ग*ात् ।
कृ*त्वाऽऽत्मसात् सुरर्षिणा भगवन् गृहीतः(स्),
सोऽहं(ङ्) कथं(न्) नु विसृजे तव भृ*त्यसेवाम् ॥ 28॥

कृत्वाऽऽत्+ मसात्

भगवन् ! यह संसार एक ऐसा अँधेरा कुआँ है, जिस में कालरूप सर्प हँसने के लिये सदा तैयार रहता है। विषय-भोगों की इच्छा वाले पुरुष उसी में गिरे हुए हैं। मैं भी सङ्गवश उसके पीछे उसी में गिरने जा रहा था। परन्तु भगवन् ! देवर्षि नारदने मुझे अपना कर बचा लिया। तब भला, मैं आपके भक्त जनों की सेवा कैसे छोड़ सकता हूँ।

मत्प्राणर*क्षणमन*न्त पितुर्वध*श्च,
म*न्ये स्वभृ*त्यऋषिवाक्यमृतं(वँ) विधातुम् ।
ख*ड्गं(म्) प्रगृह्य यदवोचदसद्विधि*त्सुस्-
त्वामीश्वरो मदपरोऽवतु कं(म्) हरामि ॥ 29॥

मत्प्राण+ रक्षण+ मनन्त, पितुर्+ वधश्च

स्वभृत्य+ ऋषि+ वाक्य+ मृतं(वँ), यदवो+ चदसद्+ विधित्सुस्

अनन्त ! जिस समय मेरे पिता ने अन्याय करनेके लिये कमर कस कर हाथ में खड्ग ले लिया और वह कहने लगा कि 'यदि मेरे सिवा कोई और ईश्वर है तो तुझे बचा ले, मैं तेरा सिर काटता हूँ', उस समय

आपने मेरे प्राणों की रक्षा की और मेरे पिता का वध किया। मैं तो समझता हूँ कि आपने अपने प्रेमी भक्त सनकादि ऋषियोंका वचन सत्य करनेके लिये ही वैसा किया था।

एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत् त्व-
माद्यन्तयोः(फ्) पृथगवस्यसि मध्यतश्च ।
सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं(न्) निजमाययेदं(न्),
नानेव तैरवसितस्तदनुप्रविष्टः ॥ 30॥

जगदे+ तदमुष्य, पृथ+ गवस्+ यसि, तै + रवसितस् + तदनु+ प्रविष्टः

भगवन्! यह सम्पूर्ण जगत् एकमात्र आप ही हैं। क्योंकि इसके आदि में आप ही कारण रूप से थे, अन्तमें आप ही अवधि के रूप में रहेंगे और बीचमें इसकी प्रतीति के रूप में भी केवल आप ही हैं। आप अपनी माया से गुणों के परिणाम स्वरूप इस जगत की सृष्टि करके इस में पहले से विद्यमान रहने पर भी प्रवेश की लीला करते हैं और उन गुणों से युक्त होकर अनेक मालूम पड़ रहे है।

त्वं(वँ) वा इदं(म्) सदसदीश भवां(म्)स्ततोऽन्यो,
माया यदात्मपरबुद्धिरियं(म्) ह्यपार्था ।
यद् यस्य जन्म निधनं(म्) स्थितिरीक्षणं(ञ्) च,
तद् वै तदेव वसुकालवदृष्टितर्वोः ॥ 31॥

भवां(म्)स्+ ततोऽन्यो, यदात्+ मपरबुद्+ धिरियं, वसुका+ लवदष्+ टितर्वोः

भगवन्! यह जो कुछ कार्य-कारण के रूप में प्रतीत हो रहा है, यह सब आप ही हैं और इससे भिन्न भी आप ही हैं। अपने पराये का वह भेद-भाव तो अर्थहीन शब्दों की माया है; क्योंकि जिससे जिसका जन्म, स्थिति, लय और प्रकाश होता है, उसका स्वरूप ही होता है— जैसे बीज और वृक्ष कारण और कार्य की दृष्टि से भिन्न-भिन्न हैं, तो भी गन्ध तन्मात्र की दृष्टि से दोनों एक ही हैं।

न्यस्येदमात्मनि जगद् विलयाम्बुमध्ये,
शेषेऽऽत्मना निजसुखानुभवो निरीहः ।
योगेन मीलितदृगात्मनिपीतनिद्रस्-
तुर्ये स्थितो न तु तमो न गुणां(म्)श्च युङ्क्ते ॥ 32॥

न्यस्ये+ दमात्+ मनि, विलयाम्+ बुमध्ये, मीलित+ दृगात् + मनिपीत+ निद्रस्

भगवन् ! आप इस सम्पूर्ण विश्व को स्वयं ही अपने में समेटकर आत्मसुख का अनुभव करते हुए निष्क्रिय होकर प्रलयकालीन जलमें शयन करते हैं। उस समय अपने स्वयं सिद्ध योग के द्वारा बाह्य दृष्टि को बंद कर आप अपने स्वरूप के प्रकाश में निद्रा को विलीन कर लेते हैं और तुरीय ब्रह्मपद में स्थित रहते हैं। उस समय आप न तो तमोगुण से ही युक्त होते और न तो विषयों को ही स्वीकार करते हैं।

तस्यैव ते वपुरिदं(न्) निजकालशक्त्या,

सञ्चोदितप्रकृतिधर्मण आत्मगूढम् ।

अम्भस्यनन्तशयनाद् विरमत्समाधेर्-

नाभेरभूत् स्वकणिकावटवन्महाब्जम् ॥ 33॥

सञ्चो+ दित+ प्रकृति+ धर्मण, अम्भस्+ यनन् + तशयनाद्,

स्वकणिका+ वटवन्+ महाब्जम्

आप अपनी कालशक्ति से प्रकृति के गुणों को प्रेरित करते हैं. इसलिये यह ब्रह्माण्ड आपका ही शरीर है। पहले यह आपमें ही लीन था। जब प्रलयकालीन जलके भीतर शेषशय्या पर शयन करने वाले आपने योगनिद्रा की समाधि त्याग दी, तब चट के बीजसे विशाल वृक्ष के समान आपकी नाभि से ब्रह्माण्ड कमल उत्पन्न हुआ।

तत्सम्भवः(ख्) कविरतोऽन्यदपश्यमानस्-

त्वां(म्) बीजमात्मनि ततं(म्) स्वबहिर्विचिन्त्य ।

नाविन्ददब्दशतमप्सु निमज्जमानो,

जातेऽङ्कुरे कथमु होपलभेत बीजम् ॥ 34॥

कवि+ रतोऽन्+ यदपश्य+ मानस् ,स्वबहिर् +विचिन्त्य, नाविन्द+ दब्द +शतमप्सु

उस पर सूक्ष्मदर्शी ब्रह्माजी प्रकट हुए। जब उन्हें कमल के सिवा और कुछ भी दिखायी न पड़ा, तब अपनेमें बीजरूप से व्याप्त आपको वे न जान सके और आपको अपने से बाहर समझ कर जलके भीतर घुसकर सौ वर्षतक ढूंढ़ते रहे। परन्तु वहाँ उन्हें कुछ नहीं मिला। यह ठीक ही है, क्योंकि अङ्कुर उग आने पर उसमें व्याप्त बीज को कोई बाहर अलग कैसे देख सकता है।

स त्वात्मयोनिरतिविस्मित आस्थितोऽब्जं(ङ्),

कालेन तीव्रतपसा परिशुद्धभावः ।

त्वामात्मनीश भुवि गन्धमिवातिसूक्ष्मं(म्),

भूतेन्द्रियाशयमये विततं(न्) ददर्श ॥ 35॥

त्वात्+ मयो+ निरति+ विस्मित, गन्धमिवा+ तिसूक्ष्मं(म्)

ब्रह्मा को बड़ा आश्चर्य हुआ। । वे हार कर कमल पर बैठ गये। बहुत समय बीत ने पर तीव्र तपस्या करने से जब उनका हृदय शुद्ध हो गया, तब उन्हें भूत, इन्द्रिय और अन्तःकरण रूप अपने शरीर में ही ओतप्रोत रूपसे स्थित आपके सूक्ष्मरूप का साक्षात्कार हुआठीक वैसे ही जैसे पृथ्वी में व्याप्त उसकी अति सूक्ष्म तन्मात्रा गन्ध का होता है।

एवं(म्) सहस्रवदनाङ्घ्रिशिरः(ख्)करोरु-
नासास्यकर्णनयनाभरणायुधाढ्यम् ।
मायामयं(म्) सदुपलक्षितसं(न्)निवेशं(न्),
दृष्ट्वा महापुरुषमाप मुदं(वँ) विरिञ्चः ॥ 36॥

सहस्र+ वदनाङ् + घ्रिशिरः(ख्)+ करोरु

नासास्य+ कर्ण+ नयना+ भरणा+ युधाड्यम् ,सदु+ पलक्षि+ तसं(न्)निवेशं(न्)

विराट् पुरुष सहस्रों मुख, चरण, सिर, हाथ, जङ्घा, नासि का, मुख, कान, नेत्र, आभूषण और आयुधों से सम्पन्न था। चौदहों लोक उसके विभिन्न अङ्गो के रूप में शोभायमान थे।वह भगवान्की एक लीलामयी मूर्ति थी। उसे देख कर ब्रह्माजी को बड़ा आनन्द हुआ।

तस्मै भवान्हयशिरस्तनुवं(ञ्) च बिभ्रद्,
वेदद्रुहावतिबलौ मधुकैटभाख्यौ ।
हत्वाऽऽनयच्छ्रुतिगणां(म्)स्तु रजस्तमश्च,
सत्त्वं(न्) तव प्रियतमां(न्) तनुमामनन्ति ॥ 37॥

भवान्+ हयशिरस् +तनुवं(ञ्), वेद + द्रुहा+ वतिबलौ

हत्वाऽऽ +नयच् + छ्रुति + गणां(म्)स्तु ,तनुमा+ मनन्ति

रजोगुण और तमोगुण रूप मधु और कैटभ नाम के दो बड़े बलवान् थे। जब वे वेदों को चुरा कर ले गये, तब आपने प्रीय अवतार ग्रहण किया और उन दोनों को मार कर सत्त्वगुण रूप श्रुतियाँ ब्रह्माजी को लौटा दीं। वह सत्त्वगुण ही आपका अत्यन्त प्रिय शरीर है- महात्मा लोग इस प्रकार वर्णन करते हैं।

इत्थं(न्) नृतिर्यगृषिदेवझषावतारैर्-
लोकान् विभावयसि हं(म्)सि जगत्प्रतीपान् ।
धर्मं(म्) महापुरुष पासि युगानुवृत्तं(ञ्),
छन्नः(ख्) कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ सं त्वम् ॥ 38॥

नृतिर्+ यगृषिदे+ वझषा+ वतारैर् ,जगत्+ प्रतीपान् ,यदभवस्+ त्रियुगोऽथ

पुरुषोत्तम ! इस प्रकार आप मनुष्य, पशु-पक्षी, ऋषि, देवता और मत्स्य आदि अवतार लेकर लोकों का पालन तथा विश्व के द्रोहियों का संहार करते हैं। इन अवतारों के द्वारा आप प्रत्येक युग में उसके धर्मो की रक्षा करते हैं। कलियुग में आप छिप कर गुप्त रूप से ही रहते हैं, इसीलिये आपका एक नाम 'त्रियुग' भी है।

नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ,
सम्प्रीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम् ।

कामातुरं(म्) हर्षशोकभयैषणार्तं(न्),

तस्मिन्कथं(न्) तव गतिं(वँ) विमृशामि दीनः ॥ 39॥

नैतन्+ मनस्+ तव, दुरित +दुष्ट+ मसाधु ,हर्षशोक +भयै+ षणार्तं(न्)

वैकुण्ठ नाथ! मेरे मन की बड़ी दुर्दशा है। वह पाप वासनाओं से तो कलुषित है ही, स्वयं भी अत्यन्त दुष्ट है। वह प्रायः ही कामनाओं के कारण आतुर रहता है और हर्ष-शोक, भय एवं लोक-परलोक, धन, पत्नी, पुत्र आदि को चिन्ताओं से व्याकुल रहता है। इसे आपको लीला-कथाओं में तो रस ही नहीं मिलता। इसके मारे मैं दीन हो रहा हूँ। ऐसे मन से मैं आपके स्वरूप का चिन्तन कैसे करूँ ?

जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति मावितृप्ता,

शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं(म्) श्रवणं(ङ्) कुतश्चित् ।

घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिर्-

बहव्यः(स्) सपत्न्य इव गेहपतिं(लँ) लुनन्ति ॥ 40॥

जिह् +वैकतोऽ +च्युत, शिश्नोऽन्+ यतस्+ त्वगुदरं(म्), घ्राणोऽन्+ यतश् + चपल+ दृक्

अच्युत यह कभी न अघानेवाली जीभ मुझे स्वादिष्ट रसों की ओर खींचती रहती है। जननेन्द्रिय सुन्दरी स्त्री की ओर, त्वचा सुकोमल स्पर्श की ओर, पेट भोजन की ओर, कान मधुर सङ्गीत की ओर, नासिका भीनी भीनी सुगन्ध की ओर और ये चपल नेत्र सौन्दर्य की और मुझे खींचते रहते हैं। इनके सिवा कर्मेन्द्रियाँ भी अपने-अपने विषयों की और ले जाने को जोर लगाती ही रहती हैं। मेरी तो वह दशा हो रही है, जैसे किसी पुरुष की बहुत-सी पत्रियाँ उसे अपने-अपने शयन गृह में ले जाने के लिये चारों ओर से घसीट रही हों।

एवं(म्) स्वकर्मपतितं(म्) भववैतरण्या-

मन्योन्यजन्ममरणाशनभीतभीतम् ।

पश्यञ्जनं(म्) स्वपरविग्रहवैरमैत्रं(म्),

हन्तेति पारचर पीपृहि मूढमद्य ॥ 41॥

मन्योन्+ यजन्म+ मरणा+ शनभी+ तभीतम्, स्वप+ रविग्रहवै+ रमैत्रं(म्)

इस प्रकार यह जीव अपने कर्म कि बन्धन में पड़कर इस संसार रूप वैतरणी नदी में गिरा हुआ है। जन्म से मृत्यु, मृत्यु से जन्म और दोनों के द्वारा कर्म भोग करते-करते यह भय भीत हो गया है। यह अपना है, यह पराया है इस प्रकार के भेद-भाव से युक्त होकर किसी से मित्रता करता है तो किसी से शत्रुता। आप इस मूढ़ जीव जाति को यह दुर्दशा देख कर करुणा से द्रवित हो जाइये। इस भव-नदी से सर्वदा पार रहने वाले भगवन्! इन प्राणियों को भी अब पार लगा दीजिये।

को न्वत्र तेऽखिलगुरो भगवन्प्रयास,

उत्तारणेऽस्य भवसम्भवलोपहेतोः ।

मूढेषु वै महदनुग्रह आर्तबन्धो,

किं(न्) तेन ते प्रियजनाननुसेवतां(न्) नः ॥ 42॥

भवसम्+ भवलो+ पहेतोः, प्रियजना +ननु+ सेवतां

जगद्गुरो ! आप इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा पालन करने वाले हैं। ऐसी अवस्था में इन जीवों को इस भव- नदी के पार उतार देने में आपको क्या प्रयास है ? दीन जनों के परमहितैषी प्रभो! भूले-भटके मूढ़ ही महान् पुरुषों के विशेष अनुग्रह पात्र होते हैं। हमें उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि हम आपके प्रियजनों की सेवा में लगे रहते हैं, इसलिये पार जाने की हमें कभी चिन्ता ही नहीं होती।

नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्यास्-

त्वद्वीर्यगायनमहामृतमग्नचित्तः ।

शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थ-

मायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान् ॥ 43॥

दुरत्+ यय+ वैतरण्यास् ,त्वद्+ वीर्यगा+ यनमहा+ मृतमग्न+ चित्तः ,भरमुद्+ वहतो

परमात्मन्! इस भव-वैतरणी से पार उतरना दूसरे लोगों के लिये अवश्य ही | कठिन है, परन्तु मुझे तो इससे तनिक भी भय नहीं है। क्योंकि मेरा चित्त इस वैतरणी में नहीं, आपकी उन लीलाओं के गान में मन रहता है, जो स्वर्गीय अमृत को भी तिरस्कृत करने वाली परमामृतस्वरूप हैं। मैं उन मूढ़ प्राणियों के लिये शोक कर रहा है, जो आपके गुणगान से विमुख रहकर इन्द्रियों के विषयों का मायामय झूठा सुख प्राप्त करने के लिये अपने सिर पर सारे संसार का भार ढोते रहते हैं।

प्रायेण देव मुनयः(स्) स्वविमुक्तिकामा,

मौनं(ञ्) चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः ।

नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको,

नान्यं(न्) त्वदस्य शरणं(म्) भ्रमतोऽनुपश्ये ॥ 44॥

कृपणान्+ विमुमुक्ष

मेरे स्वामी ! बड़े-बड़े ऋषि-मुनि तो प्रायः अपनी मुक्ति के लिये निर्जन वन में जाकर मौन व्रत धारण कर लेते हैं। वे दूसरों की भलाई के लिये कोई विशेष प्रयत्न नहीं करते। परन्तु मेरी दशा तो दूसरी ही हो रही है। मैं इन भूले हुए असहाय गरीबों को छोड़ कर अकेला मुक्त होना नहीं चाहता और इन भटकते हुए प्राणियों के लिये चाहता। आपके सिवा और कोई सहारा भी नहीं दिखायी पड़ता।

यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं(म्) हि तुच्छं(ङ्),

कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम् ।

तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः(ख्),

कण्डूतिवन्मनसिजं(वँ) विषहेत धीरः ॥ 45॥

कण्डू+ तिवन्+ मनसिजं(वँ)

घरमें फँसे हुए लोगों को जो मैथुन आदि का सुख मिलता है, वह अत्यन्त तुच्छ एवं दुःखरूप ही है-जैसे कोई दोनों हाथों से खुजला रहा हो तो उस खुजली में पहले उसे कुछ थोड़ा-सा सुख मालूम पड़ता है, परन्तु पोछे से दुःख ही दुःख होता है। किंतु ये भूले हुए अज्ञानी मनुष्य बहुत दुःख भोगर्न पर भी इन विषयों से अघाते नहीं। इसके विपरीत धीर पुरुष जैसे खुजलाहट को सह लेते हैं, वैसे ही कामादि वेगों को भी सह लेते हैं। सहने से ही उनका नाश होता है।

मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्म-
व्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः ।
प्रायः(फ्) परं(म्) पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां(वँ),
वार्ता भवन्त्युत न वात्र तु दाम्भिकानाम् ॥ 46॥

मौनव्रतश्रु+ ततपोऽध् + ययनस्+ वधर्म, व्याख्या+ रहो+ जपसमा+ धय

पुरुषोत्तम ! मोक्ष के दस साधन प्रसिद्ध हैं- मौन, ब्रह्मचर्य, शास्त्र-श्रवण, तपस्या, स्वाध्याय, स्वधर्म पालन, युक्तियों से शास्त्रों की व्याख्या, एकान्त सेवन, जप और समाधि परन्तु जिनकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, उनके लिये ये सब जीवि का के साधन-व्यापार मात्र रह जाते हैं। और दम्भिओं के लिये तो जब तक उनकी पोल खुलती नहीं, तभी तक ये जीवन निर्वाह के साधन रहते हैं और भंडा फोड हो जाने पर वह भी नहीं।

रूपे इमे सदसती तव वेदसृष्टे,
बीजाङ्कुराविव न चान्यदरूपकस्य ।
युक्ताः(स्) समक्षमुभयत्र विचिन्वते त्वां(यँ),
योगेन वह्निमिव दारुषु नान्यतः(स्) स्यात् ॥ 47॥

बीजाङ्+ कुरा+ विव, चान्+ यदरू+ पकस्य ,सम+ क्षमु+ भयत्र

वेदोंने बीज और अङ्कर के समान आपके दो रूप बताये हैं कार्य और कारण वास्तव में आप प्राकृत रूप से रहित हैं। परन्तु इन कार्य और कारण रूपो को छोड़ कर आपके ज्ञान का कोई और साधन भी नहीं है। काष्ठमन्थन के द्वारा जिस प्रकार अग्नि प्रकट की जाती है, उसी प्रकार योगीजन भक्ति योग की साधना से आपको कार्य और कारण दोनों में ही ढूँढ़ निकालते हैं। क्योंकि वास्तव में ये दोनों आपसे पृथक् नहीं हैं, आपके स्वरूप ही हैं।

त्वं(वँ) वायुरग्निरवनिर्वियदम्बुमात्राः(फ्),
प्राणेन्द्रियाणि हृदयं(ञ्) चिदनुग्रहश्च ।
सर्वं(न्) त्वमेव सगुणो विगुणश्च भूमन्,
नान्यत् त्वदस्त्यपि मनोवचसा निरुक्तम् ॥ 48॥

वायु+ रग्नि+ रवनिर् + वियदम्+ बुमात्राः(फ्) , त्वदस्+ त्यपि

अनन्त प्रभो। वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल, पञ्चतन्मात्राएँ प्राण इन्द्रिय, मन, चित्त, अहङ्कार, सम्पूर्ण जगत् एवं सगुण और निर्गुण-सब कुछ केवल आप ही है। और तो क्या, मन और वाणी के द्वारा जो कुछ निरूपण किया गया है, वह सब आप से पृथक् नहीं है।

नैते गुणा न गुणिनो महदादयो ये,

सर्वे मनः(फ्)प्रभृतयः(स्) सहदेवमर्त्याः ।

आद्यन्तवन्त उरुगाय विदन्ति हि त्वा-

मेवं(वँ) विमृश्य सुधियो विरमन्ति शब्दात् ॥ 49॥

आद्यन्+ तवन्त

समग्र कीर्ति के आश्रय भगवन् ! ये गुण और इन गुणों के परिणाम महत्तत्त्वादि, देवता, मनुष्य एवं मन आदि कोई भी आपका स्वरूप जानने में समर्थनहीं है; क्योंकि ये सब आदि-अन्त वाले हैं और आप अनादि एवं अनन्त है। ऐसा विचार करके ज्ञानीजन शब्दों की माया से उपरत हो जाते हैं।

तत् तेऽर्हत्तम नमः(स्)स्तुतिकर्मपूजाः(ख्),

कर्म स्मृतिश्चरणयोः(श्) श्रवणं(ङ्) कथायाम् ।

सं(म्)सेवया त्वयि विनेति षडङ्गया किं(म्),

भक्तिं(ञ्) जनः(फ्) परमहं(म्)सगतौ लभेत ॥ 50॥

तेऽर्हत्+ तम, स्मृतिश्+ चरणयोः(श्), षडङ्+ गया

परम पूज्य आपकी सेवा के छः अङ्ग है- नमस्कार, स्तुति, समस्त कर्मों का समर्पण, सेवा-पूजा, चरण कमलों का चिन्तन और लीला कथा का श्रवण इस षडंग सेवा के बिना आपके चरण-कमलों की भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है? और भक्ति के बिना आपकी प्राप्ति कैसे होगी ? प्रभो। आप तो अपने परम प्रिय भक्त जनों के, परमहंसों के ही सर्वस्व है।

नारद उवाच

एतावद्वर्णितगुणो, भक्त्या भक्तेन निर्गुणः ।

प्रह्लादं(म्) प्रणतं(म्) प्रीतो, यतमन्युरभाषत ॥ 51॥

एतावद्+ वर्णित + गुणो ,यत+ मन्यु+ रभाषत

नारदजी कहते है इस प्रकार भक्त प्रह्लाद ने बड़े प्रेम से प्रकृति और प्राकृत गुणों से रहित भगवान्के स्वरूप भूत गुणों वर वर्णन किया। इसके बाद वे भगवान्के चरणों में सिर झुका कर चुप हो गये। नृसिंहभगवान् का क्रोध शान्त हो गया और वे बड़े प्रेम तथा प्रसन्नता से बोले।

श्रीभगवानुवाच

प्रह्लाद भद्र भद्रं(न्) ते, प्रीतोऽहं(न्) तेऽसुरोत्तम ।

वरं(वँ) वृणीष्वाभिमतं(ङ्), कामपूरोऽस्म्यहं(न्) नृणाम् ॥ 52॥

वृणीष्वा+ भिमतं(ङ्), का+ मपूरोऽस्+ म्यहं(न्)

श्रीनृसिंह भगवान् ने कहा-परम कल्याण स्वरूप प्रह्लाद तुम्हारा कल्याण हो। दैत्यश्रेष्ठ। मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ तुम्हारी जो अभिलाषा हो, मुझ से मांग लो। मैं जीवों की इच्छाओं को पूर्ण करने वाला हूँ।

मामप्रीणत आयुष्मन्- दर्शनं(न्) दुर्लभं(म्) हि मे ।
दृष्ट्वा मां(न्) न पुनर्जन्तु- रात्मानं(न्) तप्तुमर्हति ॥ 53॥

तप्+ तुमर्हति

आयुष्मन् ! जो मुझे प्रसन्न नहीं कर लेता, उसे मेरा दर्शन मिलना बहुत ही कठिन है। परन्तु जब मेरे दर्शन हो जाते हैं, तब फिर प्राणी के हृदय में किसी प्रकार की जलन नहीं रह जाती।

प्रीणन्ति ह्यथ मां(न्) धीराः(स्), सर्वभावेन साधवः ।
श्रेयस्कामा महाभागाः(स्), सर्वासामाशिषां(म्) पतिम् ॥ 54॥

सर्वा+ सामा+ शिषां(म्)

मैं समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाला हूँ। इसलिये सभी कल्याण कामी परम भाग्यवान् साधुजन जितेन्द्रिय होकर अपनी समस्त वृत्तियों से मुझे प्रसन्न करने का ही यत्न करते हैं।

एवं(म्) प्रलोभ्यमानोऽपि, वरैर्लोकप्रलोभनैः ।
एकान्तित्वाद् भगवति, नैच्छत् तानसुरोत्तमः ॥ 55॥

वरैर्+ लोक+ प्रलोभनैः,एकान्+ तित्वाद्

असुरकुलभूषण प्रह्लादजी भगवान् के अनन्य प्रेमी थे इसलिये बड़े-बड़े लोगों को प्रलोभन मे डालने वाले वरों के द्वारा प्रलोभित किये जाने पर भी उन्होंने उनकी इच्छा नहीं की।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(म्)
सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरिते भगवत्स्तवो नाम नवमोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥